ISSN: 2456-947X, Vol. II, Issue. II, March-2019

अनघ

(An International Journal of Hindi Language, Literature and Culture)

Journal Homepage: http://cphfs_lin/research_lphp

भक्ति-संवेदना की परम्परा एवं विकास

डॉ. लोकेश कुमार गुप्ता

सहायक प्रोफेसर

माता सुंदरी महिला महाविद्यालय

नई दिल्ली -०२

E-mail: lokeshjnu@gmail.com

शोधसार: भारतीय शास्त्र, साहित्य, संस्कृति और लोक भक्ति के स्वर और स्वरूप को समझने का प्रयास वेदपूर्वकाल से लेकर अद्यतनकाल तक की चिंतना में लक्षित है। भक्ति का बीजवपन, भिन्न धर्मसाधनाओं के ऐतिहासिक रूप् से व्यक्त मत, पांचरात्र तथा अवतारवाद की भावना को विश्लेषित कर भक्ति के विकास के विकास का आकलन है।

I. प्रस्तावना

भक्ति-संवेदना व्यक्ति मानस का आदिभाव और तीव्र इच्छा है। भक्ति मानस ने पुराकाल से ही व्यक्ति में अवलम्बनात्मकता को रेखांकित किया है। भक्ति की परम्परा का विकास कुछेक विद्वान वेद, उपनिषद्, गीता और श्रीमद्भागवत से बताते हैं तो कुछ महाभारत के साक्ष्य के आधार पर वेदों के बरक्स चली तांत्रिक धारा से भक्ति की परम्परा का मूल स्रोत; भक्ति-भाव ही जिनका मूलाधार हैं ऐसे भागवत या वैष्णव धर्मों-पांचरात्र, सात्वत्, वासुदेव, नारायण आदि प्राचीन धर्म मतों के समन्वित मत- को मानते हैं। वहीं कुछ विद्वान श्रीमद्भागवत माहात्म्य के "उत्पन्ना द्रविडे साऽहं" से, भक्ति संवेदना की परम्परा का प्रादुर्भाव तमिल देश की आळवार भक्ति से मानते हैं।

II. वेदपूर्वकालीन भक्ति

भक्ति का मूल स्रोत कुछ विद्वान वेदपूर्वकालीन सिंधु संस्कृति की प्रकृति-पूजा में देखते हैं। मोहोंजोदड़ो के उत्खनन में जो मूर्ति प्राप्त हुई है, उसे पशुपति की मूर्ति मानकर विद्वानों ने निर्धारित किया कि सिन्धु संस्कृति के लोग पशुपति की आराधना करते थे। कुछ विद्वानों ने कहा कि सिन्धु संस्कृति द्रविड़ों की संस्कृति थी, और आर्यों के द्वारा खदेड़े जाने पर वे सुदूर दक्षिण में अवस्थित हुए और उन में जिस साधना का प्रचलन था, उसी साधना का विकास दक्षिण में भक्ति के रूप में हुआ और भक्ति दक्षिण से मध्ययुग में उत्तरोन्मुख हो; परंपरित पल्लवित हुई। किंतु कुछ विद्वानों ने सम्मति स्वरूप कहा कि सिंधु संस्कृति वैदिक संस्कृति से भिन्न नहीं थी। वह वैदिक संस्कृति का ही नगरीय रूप था।"[i]

मोहनजोदड़ो से जो मूर्ति उत्खनन में प्राप्त हुई है कुछ विद्वानों ने उसे पशुपति की मूर्ति माना है और कुछ विद्वानों ने इससे असहमति व्यक्त की है। पी. वी. काणे के अनुसार, "वह मूर्ति साधारण मनुष्य की या अधिक से अधिक पुरोहित की हो सकती है। उसे देव प्रतिमा मानने का कोई लक्षण उस में नहीं है।"[ii] हो सकता है कि तत्काल में देवत्व का रूप लिए किसी मूर्ति या व्यक्ति के प्रति श्रद्धा भाव रखा जाता रहा हो। वर्तमान काल में भी तो कुछ विशेष प्रकार के तथाकथित भगवानों का अवतरण हुआ है।

काणे ने ज्योतिषशास्त्र के आधार पर सिद्ध किया है कि सिंधु संस्कृति प्राचीन नहीं है। उनका तर्क है सिंधु नगरीय संस्कृति ऋग्वेदिक संस्कृति से प्राचीन नहीं थी। ज्योतिष शास्त्रीय प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि ऋग्वेदिक लोग सिंधु लोगों से प्राचीन थे।"[iii] इस सभ्यता में अग्निपूजा और आदिशिव के प्रादुर्भाव के प्रमाण मिलते हैं।[iv]

III. वेदकालीन भक्ति

वेदकालीन धर्मभावना यज्ञोपासना के रूप में प्रकट हुई है। ऋषि प्रकृति की शक्तियों को अनुभव कर; उन्हें प्रसन्न करने हेतु यज्ञायोजन का विधान करते थे। उन्होंने इंद्र, वरुण, अग्नि, के मूल रूप की स्थिति संभव है, परंतु उनका विस्तृत और विशिष्ट स्वरूप बाद में विकसित हुआ।"[v] वेदों में मार्शल[vi], मैके[vii], एवं आर. पी. चंदा[viii] आदि ने उस युग में उपासना प्रधान धर्म की स्थिति निश्चित की है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपासना अधिक रागमयी और निजी देवता के प्रति प्रधावित होकर भक्ति का रूप धारण करती हैं।[ix] मुंशीराम शर्मा ने वेदों से भक्ति संदर्भित प्रभूत तथ्यों के आधार पर कहा कि वेद में भक्तियोग के ये सभी स्तर और संबंध विद्यमान हैं।[x] प्रार्थना एवं आत्मनिवेदन के छहों अंग तथा नारद भक्ति सूत्र में वर्णित एकादश आसक्तियों (सूत्र 86) में से अधिकांश की रूपरेखा वेदों में प्राप्त है।[xi] यूरोपीय विद्वान कीथ